आद्यशक्ति गायत्री
की
समर्थ साधना
– श्रीराम शर्मा आचार्य

आद्यशक्ति गायत्री की समर्थ साधना

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०– २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१३ मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

आद्यशक्ति गायत्री की समर्थ साधना

भारतीय संस्कृति के बहुमूल्य निर्धारणों, प्रतिपादनों और अनुशासनों का सारतत्व खोजना हो, तो उसे चौबीस अक्षरों वाले गायत्री महामंत्र का मन्थन करके जाना जा सकता है । भारतीय संस्कृति का इतिहास खोजने से पता लग सकता है कि प्राचीन काल में इस समुद्र मंथन से कितने बहुमूल्य रत्न निकले थे ? भारत भूमि को 'स्वर्गादपि गरीयसी' बनाने में उस मंथन से निकले नवनीत ने कितनी बड़ी भूमिका निबाही थीं । मनुष्य में देवत्व का उदय कम से कम भारतभूमि का कमलपुष्प तो कहा ही जा सकता है । जब वह फलित हुआ, तो उसका अमर फल इस भारतभूमि को 'स्वर्गादपि गरीयसी' बना सकने में समर्थ हुआ ।

भारत को जगद्गुरु, चक्रवर्ती–व्यवस्थापक और दिव्य सम्पदाओं का उद्गम कहा जाता है । समस्त विश्व में इसी देश के अजस्र अनुदान अनेक रूपों में बिखरे हैं । यह कहने में कोई अत्युक्ति प्रतीत नहीं होती कि संपदा, सभ्यता और सुसंस्कारिता की प्रगतिशीलता इसी नर्सरी में जमीं और उसने विश्व को अनेकानेक विशेषताओं और विभूतियों से सुसंपन्न किया ।

भारतीय संस्कृति का तत्त्वदर्शन गायत्री महामंत्र के चौबीस अक्षरों की व्यांख्या विवेचना करते हुए सहज ही खोजा और पाया जा सकता है । गायत्री गीता, गायत्री स्मृति, गायत्री संहिता, गायत्री रामायण, गायत्री लहरी आदि संरचनाओं को कुरेदने से अंगारे का वह मध्य भाग प्रकट होता है, जो मुद्दतों से राख की मोटी परत जम जाने के कारण अदृश्य–अविज्ञात स्थिति में दबा हुआ पड़ा था ।

कहना न होगा कि गरिमामय व्यक्तित्व ही इस संसार की अगणित विशेषताओं, संपदाओं एवं विभूतियों का मूलभूत कारण है । वह उभरे, तो मनुष्य देवत्व का अधिष्ठाता और नर से नारायण बनने की संभावनओं से भरा–पूरा है । यह गौरव–गरिमा मानवता के साथ

किस प्रकार अविच्छिन्न रूप से जुड़ी रहे, इसका सारतत्त्व गायत्री महामंत्र के अक्षरों को महासमुद्र मानकर उसमें डुबकी लगाकर खोजा, देखा और पाया जा सकता है ।

मात्र अक्षर दुहरा लेने से तो स्कूली बच्चे प्रथम कक्षा में ही बने रहते हैं । उन्हें भी प्रशिक्षित बनने के लिए वर्णमाला, गिनती जैसी प्रथम चरणों से आगे बढ़ना पड़ता है । इसी प्रकार गायत्री मंत्र के साथ जो विभूतियाँ अविच्छिन्न रूप से आबद्ध हैं, उन्हें मात्र थोड़े से अक्षरों को याद कर लेने या दुहरा देने से वर्णित विशेषताओं को उपलब्ध नहीं माना जा सकता । उसमें सन्निहित तत्त्वज्ञान पर भी गहरी दृष्टि डालनी होगी । इतना ही नहीं, उसे हृदयंगम भी करना होगा और जीवनचर्या में नवनीत को इस प्रकार समाविष्ट करना होगा कि मलीनता का निराकरण तथा शलीनता का अनुभव संभव बन सके ।

संसार में अनेक धर्म संप्रदाय हैं, उनके अपने–अपने धर्मशास्त्र हैं । उनमें मनुष्य को उत्कृष्टता का मार्ग अपनाने के लिए प्रोत्साहन दिया गया है और समय के अनुरूप अनुशासन का विधान किया गया है । भारतीय धर्म में भी वेदों की प्रमुखता है । वेद चार हैं । गायत्री मंत्र के तीन चरण और एक शीर्ष मिलने से चार विभाग ही बनते हैं । एक–एक विभाग में एक वेद का सार तत्त्व है । आकार और विवेचना की दृष्टि से अन्यान्य धर्मकाव्यों की तुलना में वेद ही भारी पड़ते हैं । उनका सारतत्त्व गायत्री के चार चरणों में है, इसलिए उसे संसार का सबसे छोटा धर्मशास्त्र भी कह सकते हैं । "हाथी के पैर में अन्य सब प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं" वाली उक्ति यहाँ भली प्रकार लागू होती है ।

गायत्री और सावित्री का उद्भव

पौराणिक कथा–प्रसंग में चर्चा आती है कि सृष्टि के आरंभ काल में सर्वत्र मात्र जल संपदा ही थी । उसी के मध्य में विष्णु भगवान शयन कर रहे थे । विष्णु की नाभि में एक कमल उपजा । कमल

पुष्प पर ब्रह्माजी अवतरित हुए । वे एकाकी थे । असमंजसपूर्वक अनुरोध करने लगे कि मुझे क्यों उत्पन्न किया गया है ? क्या करूँ ? कुछ करने के लिए साधन कहाँ से पाऊँ ? इन जिज्ञासाओं का समाधान आकाशवाणी ने किया और कहा–''गायत्री के माध्यम से तप करें, आवश्यक मार्गदर्शन भीतर से ही उभरेगा ।'' उनने वैसा ही किया और आकाशवाणी द्वारा बताए गए गायत्री मंत्र की तपपूर्वक साधना करने लगे ।

पूर्णता की स्थिति प्राप्त हुई । गायत्री दो खण्ड बनकर दर्शन देने एवं वरदान–मार्गदर्शन से निहाल करने उतरी । उन दो पक्षों में से एक को गायत्री, दूसरे को सावित्री नाम दिया गया । गायत्री अथात् तत्त्वज्ञान से सम्बन्धित पक्ष । सावित्री अर्थात् भौतिक प्रयोजनों में उसका जो उपयोग हो सकता है, उसका प्रकटीकरण । जड़–सृष्टि पदार्थ संरचना सावित्री शक्ति के माध्यम से और विचारणा से संबंधित भाव संवेदना, आस्था, आकांक्षा, क्रियाशीलता जैसी विभूतियों का उद्भव गायत्री के माध्यम से प्रकट हुआ । यह संसार जड़ और चेतन के–प्रकृति और परब्रह्म के समन्वय से ही दृष्टिगोचर एवं क्रियारत दीख पड़ता है ।

इस कथन का सारतत्त्व यह है कि गायत्री–दर्शन में सामूहिक सद्बुद्धि को प्रमुखता मिली है । इसी आधार को जिस–तिस प्रकार से अपनाकर मनुष्य मेधावी प्राणवान बनता है । भौतिक पदार्थों को परिष्कृत करने एवं उनका सदुपयोग कर सकने वाला भौतिक विज्ञान सावित्री विद्या का ही एक पक्ष है । दोनों को मिला देने पर समग्र अभ्युदय बन पड़ता है । पूर्णता के लिए दो हाथ, दो पैर आवश्यक हैं । दो फेफड़े, दो गुर्दे भी अभीष्ट हैं । गाड़ी दो पहियों के सहारे ही चल पाती है, अस्तु, यदि गायत्री महाशक्ति का समग्र लाभ लेना हो, तो उसके दोनों ही पक्षों को समझना एवं अपनाना आवश्यक है ।

तत्त्वज्ञान, मान्यताओं एवं भावनाओं को प्रभावित करता है । इन्हीं का मोटा स्वरूप चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार है । गायत्री का

तत्त्वज्ञान, इस स्तर की उत्कृष्टता अपनाने के लिए सद्विषयक विश्वासों को अपनाने के लिए प्रेरणा देता है । उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, मर्यादा एवं कर्तव्यपरायणता जैसी मानवी गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रहने वाली आस्थाओं को गायत्री का तत्त्वज्ञान कहना चाहिए ।

त्रिपदा गायत्री-तीन धाराओं का संगम

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है, उसके तीन चरण हैं । उद्गम एक होते हुए भी उसके साथ तीन दिशा धाराएँ जुड़ती हैं–

(१) सविता के भर्ग–तेजस् का वरण अर्थात् जीवन में ऊर्जा एवं आभा का बाहुल्य । अवांछनीयताओं में अंतःऊर्जा का टकराव । परिष्कृत प्रतिभा एवं शौर्य–साहस इसी का नाम है । गायत्री के नैष्ठिक साधक में यह प्रखर प्रतिभा इस स्तर की होनी चाहिए कि अनीति के आगे न सिर झुकाएँ और न झुककर कायरता के दबाव में कोई समझौता करें ।

(२) दूसरा चरण है–देवत्व का वरण, शालीनता को अपनाते हुए उदारचेता बने रहना, लेने की अपेक्षा देने की प्रवृत्ति का परिपोषण करना । उस स्तर के व्यक्तित्व से जुड़ने वाली गौरव–गरिमा की अंतराल में अवधारणा करना । यही है "देवस्य धीमहि ।"

(३) तीसरा सोपान है–धियो यो नः प्रचोदयात्" । मात्र अपनी ही नहीं, अपने समूह, समाज, संसार में सद्बुद्धि की प्रेरणा उभारना । मेधा, प्रज्ञा, दूरदर्शी विवेकशीलता, नीर–क्षीर विवेक में निरत बुद्धिमत्ता ।

यही है आध्यात्मिक त्रिवेणी संगम, जिसका अवगाहन करने पर मनुष्य असीम पुण्यफल का भागी बनता है । कौए से कोयल एवं बगुले से हंस बन जाने की उपमा जिस त्रिवेणी संगम के स्नान से दी जाती है, वह वस्तुतः आदर्शवादी साहसिकता, देवत्व की पक्षधर शालीनता एवं आदर्शवादिता को प्रमुखता देने वाली महाप्रज्ञा है । गायत्री का तत्त्वज्ञान समझने और स्वीकारने वाले में यह तीनों ही

विशेषताएँ न केवल पायी जानी चाहिए, वरन् उनका अनुपात निरन्तर बढ़ते रहना चाहिए । इस आस्था को स्वीकारने के उपरान्त संकीणता, कृपणता से अनुबंधित ऐसी स्वार्थपरता के लिए कोई गुंजायश नहीं रह जाती कि उससे प्रभावित होकर कोई दूसरों के अधिकारों का हनन करके अपने लिए अनुचित स्तर का लाभ बटोर सके, अपराधी या आततायी कहलाने के पतन पराभव अपना सके ।

नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक, भौतिक और आत्मिक, दार्शनिक एवं व्यावहारिक, संवर्धन एवं उन्मूलनपरक सभी विषयों पर गायत्री के चौबीस अक्षरों में विस्तृत प्रकाश डाला गया है और उन सभी तथ्यों तथा रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, जिनके सहारे संकटों से उबरा और सुख शांति के सरल मार्ग को उपलब्ध किया जा सकता है । जिन्हें इस सम्बन्ध में रुचि है, वे अक्षरों के, वाक्यों के विवेचनात्मक प्रतिपादनों को ध्यानपूर्वक पढ़ लें और देखें कि इस छोटे से शब्द समुच्चय में प्रगतिशीलता के, अतिमहत्वपूर्ण तथ्यों का किस प्रकार समावेश किया गया है । इस आधार पर इसे ईश्वरीय निर्देश, शास्त्र–वचन एवं आप्तजन कथन के रूप में अपनाया जा सकता है । गायत्री के विषय में गीता का वाक्य है–"गायत्री छन्दसामहम्" । भगवान कृष्ण ने कहा है कि "छन्दों में गायत्री मैं स्वयं हूँ, जो विद्या–विभूति के रूप में गायत्री की व्याख्या करते हुए विभूति योग में प्रकट हुई हैं ।

शक्ति केंद्रों का उद्दीपन-शब्द शक्ति द्वारा

एक विलक्षणता गायत्री महामंत्र में यह है कि इसके अक्षर, शरीर एवं मनःतंत्र के मर्म केंद्रों पर ऐसा प्रभाव छोड़ते हैं कि कठिनाइयों का निराकरण एवं समृद्ध–सुविधाओं का सहज संवर्धन बन पड़े । टाइप राइटर पर एक जगह कुंजी दबायी जाती है और दूसरी जगह सम्बद्ध अक्षर छप जाता है । बहिर्मन पर, विभिन्न स्थानों पर पड़ने वाला दबाव एवम् कण्ठ के विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न शब्दों का उच्चारण अपना प्रभाव छोड़ता है और इन स्थानों पर पड़ा दबाव सूक्ष्म शरीर के विभिन्न

शक्ति केन्द्रों को उद्वेलित–उत्तेजित करता है । योग शास्त्रों के षट्चक्रों, पंचकोषों, चौबीस ग्रन्थियों, उपत्यिकाओं और सूक्ष्म नाड़ियों का विस्तारपूर्वक वर्णन है । उनके स्थान, स्वरूप के प्रतिफल आदि का विवेचन मिलता है । साथ ही यह भी बताया गया है कि इन शक्ति केन्द्रों को जागृत कर लेने पर साधक उन विशेषताओं–विभूतियों से सम्पन्न हो जाता है । इनकी अपनी–अपनी समर्थता, विशेषता एवं प्रतिक्रिया है । गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों का इनमें से एक–एक से संबंध है । उच्चारण से मुख, तालु, ओष्ठ, कंठ आदि पर जो दबाव पड़ता है, उसके कारण यह केन्द्र अपने अपने तारतम्य के अनुरूप वीणा के तारो की तरह झंकृत हो उठते हैं, सितार के तारों की तरह, वायलिन–गिटार की तरह, बैन्जो–हारमोनियम की तरह झंकृत हो उठते और एक ऐसी स्वर लहरी निःसृत करते हैं, जिनसे प्रभावित होकर शरीर में विद्यमान दिव्य ग्रंथियां जागृत होकर अपने भीतर उपस्थित विशिष्ट शक्तियों के जागृत एवं फलित होने का परिचय देने लगती हैं । सम्पर्क साधने में मंत्र का उच्चारण टेलेक्स का काम करता है। रेडियो या दूरदर्शन प्रसारण की तरह शक्ति धाराएँ यों सब ओर निःसृत होती हैं, पर उस केन्द्र का विशेषतया स्पर्श करती हैं, जो प्रयुक्त अक्षरों के साथ शक्ति केन्द्रों को जोड़ते हैं ।

शरीर की विभिन्न देव-शक्तियों का जागरण

विराट् ब्रह्म की कल्पना में विश्व पुरुष के शरीर में जहाँ–तहाँ विभिन्न देवताओं की उपस्थिति बताई गई है । गौ माता के शरीर में विभिन्न देवताओं के निवास का चित्र देखने को मिलता है । मनुष्य शरीर भी एक ऐसी आत्मसत्ता का दिव्य मन्दिर है, जिसमें विभिन्न स्थानों पर विभिन्न देवताओं की स्थिति मानी गई है । धार्मिक कर्मकाण्डों में स्थापना भावशक्ति के आधार पर की जाती है । न्यास–विधान इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए है, सामान्यतया यह सभी देवता प्रसुप्त स्थिति में रहते हैं, अनायास ही नहीं जाग पड़ते । अनेक साधनाएँ, तपश्चर्याएँ इसी जागरण के हेतु की जाती हैं । सोता सिंह

या सोता सर्प निर्जीव की तरह पड़े रहते हैं, पर जब वे जागृत होते हैं, तो अपना पूरा पराक्रम दिखाने लगते हैं । यही प्रक्रिया मंत्र साधना द्वारा भी पूरी की जाती है । इस तथ्य को इस रूप में समझा जा सकता है कि मंत्र साधना, विशेषतया गायत्री उपासना से एक प्रकार का लुंज–पुंज व्यक्ति जागृत, सजीव एवं सशक्त हो उठता है । उसी उभरी विशेषता को मंत्र की प्रतिक्रिया या फलित हुई सिद्धि कह सकते हैं ।

गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों में, संबद्ध विभूतियों के जागरण की क्षमता है, साथ ही हर अक्षर एक ऐसे सद्‌गुण की ओर इंगित करता है, जो अपने आप में इतने सशक्त हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का हर पक्ष ऊंचाई की ओर उभारते हैं और उसकी सत्ता अपने आप ही अपना काम करने लगती है । फिर उन सफलताओं को उपलब्ध कर सकना संभव हो जाता है, जिनकी कि किसी देवी देवता अथवा मंत्राराधन से आशा की जाती है । ओजस्, तेजस्, वर्चस् इन्हीं को कहते हैं । प्रथम चरण में सूर्य जैसी तेजस्विता ऊर्जा और गतिशीलता मनुष्य में उभरे, तो समझना चाहिए कि उसने वह बलिष्ठता प्राप्त कर ली, जिसकी सहायता से ऊँची छलांग लगाना और कठिनाइयों से लड़ना संभव होता है । इसी प्रकार दूसरे चरण में देवत्व के वरण की बात है । मनुष्यों में ही पशु, पिशाच और देवता होते हैं । शालीनता, सज्जनता, विशिष्टता, भलमनसाहत इन्हीं विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं । तीसरे चरण में–सामुदायिक सद्‌बुद्धि के अभिवर्धन का निर्देशन है । अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता । एक तिनका रस्सा नहीं बनता, एक सींक की बुहारी क्या काम करेगी ? इसलिए कहा जाता है कि एकाकी स्तर के चिंतन तक सीमित न रहा जाए । सामूहिकता, सामाजिकता को भी उतना ही महत्व दिया जाए । सद्‌बुद्धि से अपने समेत सबको सुसज्जित किया जाए । यह भूल न जाया जाए कि दुर्बुद्धि ही दुष्टता और भ्रष्टता की दिशा में उत्तेजना देती है और यही दुर्गति का निमित्त कारण बनती है ।

दर्शन और प्रक्रिया मिलकर ही अधूरापन दूर करते हैं । गायत्री मंत्र का उपासनात्मक कर्मकाण्ड भी फलप्रद है, क्योंकि शब्द गुम्फन अन्तः की सभी रहस्यमयी शक्तियों को उत्तेजित करता है, पर यह भी भूला न जाए कि स्वच्छ, शुद्ध, परिष्कृत व्यक्तित्व जब गुण–कर्म–स्वभाव की उत्कृष्टता से परिष्कृत–अनुप्राणित होता है, तभी वह समग्र परिस्थिति बनती है, जिसमें साधना से सिद्धि की आशा की जा सकती है । घिनौने, पिछड़े, अनगढ़ और कुकर्मी व्यक्ति यदि पूजा–पाठ करते भी रहें, तो उसका कोई उपयुक्त प्रतिफल नहीं देखा जाता । ऐसे ही एकांगी प्रयोग जब निष्फल रहते हैं, तो लोग समूची उपासना तथा आध्यात्मिकता को व्यर्थ बताते हुए देखे जाते हैं । बिजली के दोनों तार मिलने पर ही करेण्ट चालू होता है अन्यथा वे सभी उपकरण बेकार हो जाते हैं जो विभिन्न प्रयोजनों से लाभान्वित करने के लिए बनाए गए हैं ।

इसीलिए उपासना के साथ जीवन साधना और लोकमंगल की आराधना को भी संयुक्त रखने का निर्देश है । पूजा उन्हीं की सफल होती है, जो व्यक्तित्व और प्रतिभा को परिष्कृत करने में तत्पर रहते हैं, साथ ही सेवा–साधना को, पुण्य परमार्थ को सींचने, खाद लगाने में भी उपेक्षा नहीं करते । त्रिपदा गायत्री में जहाँ शब्द गठन की दृष्टि से तीन चरण हैं, वहीं साथ में यह भी अनुशासन है कि धर्म–धारणा और सेवा साधना का खाद पानी भी उस वट–वृक्ष को फलित्त होने की स्थिति तक पहुँचाने के लिए ठीक तरह संजोया जाता रहे ।

यज्ञोपवीत के रूप में गायत्री की अवधारणा

मंत्र दीक्षा के रूप में गायत्री का अवधारण करते समय उपनयन संस्कार कराने की भी आवश्यकता पड़ती है । इसी प्रक्रिया को द्विजत्व की, मानवी गरिमा के अनुरूप जीवन परिष्कृत करने की अवधारणा भी कहते हैं । जनेऊ पहनना, उसे कंधे पर धारण करने का तात्पर्य जीवनचर्या को, काय कलेवर को देव

मंदिर–गायत्री देवालय बना लेना माना जाता है । यज्ञोपवीत में नौ धागे होते हैं । इन्हें नौ मानवी विशिष्टता को उभारने वाले सद्‌गुण भी कहा जा सकता है । एक गुण को स्मरण रखे रहने के लिए एक धागे का प्रावधान इसीलिए है कि इस अवधारण के साथ–साथ उन नौ सद्‌गुणों को समुन्नत बनाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहा जाए, जो अनेक विभूतियों और विशेषताओं से मनुष्य को सुसम्पन्न करते हैं ।

सौर मंडल में नौ ग्रह सदस्य हैं । रत्नों की संख्या भी नौ मानी जाती है । अंकों की शृंखला भी नौ पर समाप्त हो जाती है । शरीर में नौ द्वार हैं । इसी प्रकार अनेकानेक सद्‌गुणों की, धर्म–लक्षणों की गणना में नौ को प्रमुखता दी गई है । वे पास में हों, तो समझना चाहिए कि पुरातनकाल में "नौ लखा हार" की जो प्रतिष्ठा थी वह अपने को भी करतलगत हो गई । ये नौ गुण इस प्रकार हैं–

(१) **श्रमशीलता** : समय, श्रम और मनोयोग को किसी उपयुक्त प्रयोजन में निरंतर लगाए रहना । आलस्य–प्रमाद को पास न फटकने देना । समय का एक क्षण भी बर्बाद न होने देना । निरंतर कार्य में संलग्न रहना ।

(२) **शिष्टता** : शालीनता, सज्जनता, भलमनसाहत का हर समय परिचय देना । अपनी नम्रता और दूसरों की प्रतिष्ठा का परिचय देना, दूसरों के साथ वही व्यवहार करना, जो औरों से अपने लिए चाहा जाता है । सभ्यता, सुसंस्कारिता और अनुशासन का निरंतर ध्यान रखना । मर्यादाओं का पालन और वर्जनाओं से बचाव का सतर्कतापूर्वक ध्यान रखना ।

(३) **मितव्ययिता** : 'सादा जीवन–उच्च विचार' की अवधारणा । उद्धत–शृंगारिक, शेखीखोरी, अमीरी का अहंकारी प्रदर्शन, अन्य रूढ़ियों–कुरीतियों से जुड़े हुए अपव्यय से बचना सादगी है, जिसमें चित्र–विचित्र फैशन बनाने और कीमती जेवर धारण करने की कोई गुंजाइश नहीं है । अधिक खर्चीले व्यक्ति

प्रायः बेईमानी पर उतारू तथा ऋणी देखे जाते हैं । उसमें ओछापन, बचकानापन और अप्रामाणिकता–अदूरदर्शिता का भी आभास मिलता है ।

(४) **सुव्यवस्था** : हर वस्तु को सुव्यवस्थित, सुसज्जित स्थिति में रखना । फूहड़पन और अस्त–व्यस्तता, अव्यवस्था का दुर्गुण किसी भी प्रयोजन में झलकने न देना । समय का निर्धारण करते हुए, कसी हुई दिनचर्या बनाना और उसका अनुशासनपूर्वक परिपालन करना । चुस्त–दुरुस्त रहने के ये कुछ आवश्यक उपक्रम हैं । वस्तुएँ यथास्थान न रखने पर वे कूड़ा कचरा हो जाती हैं । इसी प्रकार अव्यवस्थित व्यक्ति भी असभ्य और असंस्कृत माने जाते हैं ।

(५) **उदार सहकारिता** : मिलजुलकर काम करनें में रस लेना । पारस्परिक आदान–प्रदान का स्वभाव बनाना । मिल–बाँटकर खाने और हंसने–हंसाते समय गुजारने की आदत डालना । इसे सामाजिकता एवं सहकारिता भी कहा जाता है । अब तक की प्रगति का यही प्रमुख आधार रहा है और भविष्य भी इसी रीति–नीति को अपनाने पर समुन्नत हो सकेगा । अकेलेपन की प्रवृत्ति तो, मनुष्य को कुत्सा और कुंठाग्रस्त ही रखती है ।

उपरोक्त पांच गुण पंचशील कहलाते हैं, व्यवहार में लाए जाते हैं, स्पष्ट दीख पड़ते हैं । इसलिए इन्हें अनुशासन वर्ग में गिना जाता है । धर्म–धारणा भी इन्हीं को कहते हैं । इनके अतिरिक्त भाव–श्रद्धा से संबंधित उत्कृष्टता के पक्षधर स्वभाव भी हैं, जिन्हें श्रद्धा–विश्वास स्तर पर अंतःकरण की गहराई में सुस्थिर रखा जाता है । इन्हें आध्यात्मिक देव–संपदा भी कह सकते हैं । आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का विविध परिचय इन्हीं चार मान्यताओं के आधार पर मिलता है । चार वेदों का सार–निष्कर्ष यही है । चार दिशा–धाराएँ तथा वर्णाश्रम–धर्म के पीछे काम करने वाली मूल मान्यताएँ भी यही हैं ।

(६) समझदारी : दूरदर्शी विवेकशीलता । नीर–क्षीर विवेक, औचित्य का ही चयन । परिणामों पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए कुछ करने का प्रयास । जीवन की बहुमूल्य संपदा के एक–एक क्षण का श्रेष्ठतम उपयोग । दुष्प्रवृत्तियों के साथ जुड़ी हुई दुर्घटनाओं के संबंध में समुचित सतर्कता का अवगाहन ।

(७) ईमानदारी : आर्थिक और व्यावहारिक क्षेत्र में इस प्रकार का बरताव जिसे देखने वाला सहज सज्जनता का अनुमान लगा सके, विश्वस्त समझ सके और व्यवहार करने में किसी आशंका की गुंजाइश न रहे । भीतर और बाहर को एक समझे । छल, प्रवंचना, अनैतिक आचरण से दृढ़तापूर्वक बचना ।

(८) जिम्मेदारी : मनुष्य यों स्वतंत्र समझा जाता है, पर वह जिम्मेदारियों के इतने बंधनों से बंधा हुआ है कि अपने–परायों में से किसी के भी साथ अनाचरण की गुंजायश नहीं रह जाती । ईश्वर प्रदत्त शरीर, मानस एवं विशेषताओं में से किसी का भी दुरुपयोग न होने पाए । परिवार के सदस्यों से लेकर देश, धर्म, समाज, संस्कृति के प्रति उत्तरदायित्वों का तत्परतापूर्वक निर्वाह । इसमें से किन्हीं में भी अनाचार का प्रवेश न होने देना ।

(९) बहादुरी : साहसिकता, शौर्य और पराक्रम की अवधारणा । अनीति के सामने सिर न झुकाना । अनाचार के साथ कोई समझौता न करना । संकट देखकर घबड़ाहट उत्पन्न न होने देना । अपने गुण, कर्म, स्वभाव में प्रवेश करती जाने वाली अवांछनीयता से निरंतर जूझना और उसे निरस्त करना । लोभ, मोह, अहंकार, कुसंग, दुर्व्यसन आदि सभी अनौचित्यों को निरस्त कर सकने योग्य संघर्षशीलता के लिए कटिबद्ध रहना ।

नौ सद्गुणों की अभिवृद्धि ही गायत्री-सिद्धि

पांच क्रियापरक और चार भावनापरक, इन नौ गुणों के समुच्चय को ही धर्म–धारणा कहते हैं । गायत्री मंत्र के नौ शब्द इन्हीं नौ दिव्य संपदाओं को धारण किए रहने की प्रेरणा देते हैं । यज्ञोपवीत

के नौ धागे भी यही हैं । उन्हें गायत्री की प्रतीक प्रतिमा माना गया है और इनके निर्वाह के लिए सदैव तत्परता बरतने के लिए, उसे कंधे पर धारण कराया जाता है, अर्थात् मानवी गरिमा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए नौ अनुशासन भरे उत्तरदायित्व कंधे पर धारण करना ही वस्तुतः यज्ञोपवीत धारण का मर्म है । इन्हीं को सच्चे अर्थों में गायत्री मंत्र का जीवनचर्या में समावेश कहते हैं । मंत्रदीक्षा–गुरु दीक्षा के समय भी इन नौ अनुशासनों को हृदयंगम कराया जाता है ।

गायत्री मंत्र की साधना से व्यक्ति में यह नौ सद्गुण उभरते हैं । इसी बात को इन शब्दों में भी कहा जा सकता है कि जो इन नौ गुणों का अवधारण करता है, उसी के लिए यह संभव है कि गायत्री मंत्र में सन्निहित ऋद्धि–सिद्धियों को अपने में उभरता देखे । गंदगी वाले स्थान पर बैठने के लिए कोई सुरुचि सम्पन्न भला आदमी तैयार नहीं होता, फिर यह आशा कैसे की जाए कि निकृष्ट स्तर का चिंतन, चरित्र और व्यवहार अपनाए रहने वालों पर किसी प्रकार का दैवी अनुग्रह बरसेगा और उन्हें वह गौरव मिलेगा, जो देवत्व के साथ जुड़ने वालों को मिला करता है ।

ज्ञान और कर्म का युग्म है । दोनों की सार्थकता इसी में है कि वे दोनों साथ–साथ रहें, एक दूसरे को प्रभावित करें और देखने वालों को पता चले कि जो सीखा, समझा, जाना और माना गया है, वह काल्पनिक मात्र न होकर इतना सशक्त भी है कि क्रिया को, विधि–व्यवस्था को अपने स्तर के अनुरूप बना सके ।

जीवन–साधना से जुड़ने वाले गायत्री महामंत्र के नौ अनुशासनों का ऊपर उल्लेख हो चुका है, इन्हें अपने जीवन क्रम के हर पक्ष में समन्वित किया जाना चाहिए । अथवा यह आशा रखें कि यदि श्रद्धा–विश्वासपूर्वक सच्चे मन से उपासना की गई हो, तो उसका सर्वप्रथम परिचय इन सद्गुणों की अभिवृद्धि के रूप में परिलक्षित होगा । इसके बाद वह पक्ष आरंभ होगा, जिसे अलौकिक, आध्यात्मिक, अतीन्द्रिय अथवा समृद्धियों, विभूतियों के रूप में प्रमाण–परिचय देने की आशा रखी जाती है ।

गायत्री का तत्त्वदर्शन और भौतिक उपलब्धियाँ

गायत्री उपासना का सहज स्वरूप है—व्याहृतियों वाली त्रिपदा गायत्री का जप । 'ॐ भूर्भुवः स्वः'—यह शीर्ष भाग है, जिसका तात्पर्य है कि आकाश, पाताल और धरातल के रूप में जाने जाने वाले तीनों लोकों में उस दिव्य सत्ता को समाविष्ट अनुभव करना । जिस प्रकार न्यायाधीश की, पुलिस अधीक्षक की उपस्थिति में अपराध करने का कोई साहस नहीं करता, उसी प्रकार सर्वदा, सर्वव्यापी, न्यायकारी सत्ता की उपस्थिति अपने सब ओर सदा सर्वदा अनुभव करना और किसी भी स्तर की अनीति का आचरण न होने देना । "ॐ" अर्थात् परमात्मा । उसे विराट् विश्व ब्रह्माण्ड के रूप में व्यापक भी समझा जा सकता है । यदि उसे आत्म सत्ता में समाविष्ट भर देखना हो, तो स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर में परमात्मा सत्ता की उपस्थिति अनुभव करनी पड़ती है और देखना पड़ता है कि इन तीनों ही क्षेत्रों में कहीं ऐसी मलीनता न जुटने पाए, जिसमें प्रवेश करते हुए परमात्म सत्ता को संकोच हो । साथ ही इन्हें इतना स्वस्थ, निर्मल एवं दिव्यताओं से सुसंपन्न रखा जाए कि जिस प्रकार खिले गुलाब पर भौंरे अनायास ही आ जाते हैं, उसी प्रकार तीनों शरीरों में परमात्मा की उपस्थिति दीख पड़े और उनकी सहज सदाशयता की सुगंधि से समीपवर्ती समूचा वातावरण सुगंधित हो उठे ।

गायत्री मंत्र का अर्थ सरल और सर्वविदित है—सवितुः—तेजस्वी । वरेण्यं—वरण करना, अपनाना । भर्गो—अनौचित्य को तेजस्विता के आधार पर दूर हटा फेंकना । देवस्य—देवत्व की पक्षधर विभूतियों को । धीमहि अर्थात् धारण करना । अंत में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इन विशेषताओं से संपन्न परमेश्वर हम सबकी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे, सद्बुद्धि का अनुदान प्रदान करे । कहना न होगा कि ऐसी सद्बुद्धि प्राप्त व्यक्ति, जिसकी सद्भावना जीवंत हो, वह अपने दृष्टिकोण में स्वर्ग जैसी

भरी–पूरी मनःस्थिति एवं भरी–पूरी परिस्थितियों का रसास्वादन करता है । वह जहाँ भी रहता है, वहाँ अपनी विशिष्टताओं के बलबूते स्वर्गीय वातावरण बना लेता है ।

स्वर्ग प्राप्ति के अतिरिक्त दैवी अनुकंपा का दूसरा लाभ है– मोक्ष । मोक्ष अर्थात् मुक्ति । कषाय–कल्मषों से मुक्ति, दोष–दुर्गुणों से मुक्ति, भव–बंधनों से मुक्ति । यही भव बंधन है, जो स्वतंत्र अस्तित्व लेकर जन्मे मनुष्यों को लिप्साओं और कुत्साओं के रूप में अपने बंधनों में बाँधती है । यदि आत्मशोधनपूर्वक इन्हें हटाया जा सके, तो समझना चाहिए कि जीवित रहते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति हो गई । इसके लिए मरणकाल आने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । गायत्री की पूजा–उपासना और जीवन–साधना यदि सच्चे अर्थों में की गई हो, तो उसकी दोनों आत्मिक ऋद्धि–सिद्धियां स्वर्ग और मुक्ति के रूप में निरंतर अनुभव में उभरती रहती हैं और उनके रसास्वादन से हर घड़ी कृत–कृत्य हो चलने का अनुभव होता है ।

गायत्री उपासना द्वारा अनेकों भौतिक सिद्धियों, उपलब्धियों के मिलने का भी इतिहास पुराणों में वर्णन है । वशिष्ठ के आश्रम में विद्यमान नंदिनी रूपी गायत्री ने राजा विश्वामित्र की सहस्रों सैनिकों वाली सेना का कुछ ही पलों में भोजन व्यवस्था बनाकर, उन सबको चकित कर दिया था । गौतम मुनि को माता गायत्री ने उस सबको चकित कर दिया था । गौतम मुनि को माता गायत्री ने अक्षय पात्र प्रदान किया था, जिसके माध्यम से उन दिनों की दुर्भिक्ष पीड़ित जनता को आहार प्राप्त हुआ था । दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ संपन्न कराने वाले शृंगी ऋषि को गायत्री का अनुग्रह ही प्राप्त था । जिसके सहारे चार देवपुत्र उन्हें प्राप्त हुए । ऐसी ही अनेकों कथा–गाथाओं से पौराणिक साहित्य भरा पड़ा है, जिनमें गायत्री साधना के प्रतिफलों की चमत्कार भरी झलक मिलती है ।

चौबीस अक्षरों का शक्तिपुंज

गायत्री के नौ शब्द ही महाकाली की नौ प्रतिमाएँ हैं, जिन्हें आश्विन की नवदुर्गाओं में विभिन्न उपचारों के साथ पूजा जाता है । देवी भागवत में गायत्री की तीन शक्तियों का, ब्राह्मी, वैष्णवी, शांभवी के रूप में निरूपित किया गया है और नारी वर्ग की महा शक्तियों को चौबीस की संख्या में निरूपित करते हुए, उनमें से प्रत्येक के सुविस्तृत माहात्म्यों का वर्णन किया है ।

गायत्री के चौबीस अक्षरों का अलंकारिक रूप से अन्य प्रसंगों में भी निरूपण किया गया है । भगवान के दस ही नहीं, चौबीस अवतारों का भी पुराणों में वर्णन है । ऋषियों में सप्त ऋषियों की तरह उनमें से चौबीस को प्रमुख माना गया है—यह गायत्री के अक्षर ही हैं । देवताओं में से त्रिदेवों की ही प्रमुखता है, पर विस्तार मे जाने पर पता चलता है कि वे इतने ही नहीं, वरन् चौबीस की संख्या में भी मूर्धन्य प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे हैं । महर्षि दत्तात्रेय ने ब्रह्माजी के परामर्श से चौबीस गुरुओं से अपनी ज्ञान–पिपासा को पूर्ण किया था । यह चौबीस गुरु प्रकारांतर से गायत्री के चौबीस अक्षर ही हैं ।

सौर मंडल के नौग्रह हैं । सूक्ष्म शरीर के छः चक्र और तीन ग्रंथि समुच्चय विख्यात हैं, इस प्रकार उनकी संख्या नौ हो जाती है । इन सबकी अलग–अलग अभ्यर्थनाओं की रूप–रेखा साधना शास्त्रों में वर्णित हैं । गायत्री के नौ शब्दों की व्याख्या में निरूपित किया गया है कि इनसे किस पक्ष की, किस प्रकार साधना की जाए, तो उसके फलस्वरूप किस प्रकार उनमें सन्निहित दिव्यशक्तियों की उपलब्धि होती रहे । अष्टसिद्धियों और नौ निद्धियों को इसी परिकर के विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिक्रिया समझा जा सकता है । अतीन्द्रिय क्षमताओं के रूप में परामनोविज्ञानी मानवी सत्ता में सन्निहित जिन विभूतियों का वर्णन निरूपण करते हैं, उन सबकी संगति गायत्री मंत्र के खण्ड–उपखण्डों के साथ पूरी तरह बैठ जाती है । देवी भागवत सुविस्तृत उपपुराण है । उसमें महाशक्ति के

अनेक रूपों की विवेचना तथा शृंखला है । उसे गायत्री की रहस्यमय शक्तियों का उद्घाटन ही समझा जा सकता है । ऋषि युग के प्रायः सभी तपस्वी गायत्री का अवलंबन लेकर ही आगे बढ़े हैं । मध्यकाल में भी ऐसे सिद्ध पुरुषों के अनेक कथानक मिलते हैं, जिनमें यह रहस्य सन्निहित है कि उनकी सिद्धियाँ–विभूतियाँ गायत्री पर ही अवलंबित हैं ।

यदि इन्हीं दिनों इस संदर्भ में अधिक जानना हो तो अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा द्वारा प्रकाशित गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्डों का अवगाहन किया जा सकता है । साथ ही यह भी खोजा जा सकता है कि उस ग्रंथ के प्रणेता ने सामान्य व्यक्तित्व और स्वल्प साधन होते हुए भी कितने बड़े और कितने महत्वपूर्ण कार्य कितनी बड़ी संख्या में संपन्न किए हैं । उन्हें कोई समर्थ व्यक्ति, यों पांच जन्मों में या पांच शरीरों की सहायता से ही किसी प्रकार संपन्न कर सकता है ।

अन्यान्य धर्मों में अपने अपने संप्रदाय से संबंधित एक एक ही प्रमुख मंत्र है । भारतीय धर्म का भी एक ही उद्गम स्रोत है–गायत्री । उसी के विस्तार रूप में पेड़ के तने, टहनी, पत्ते, फल–फूल आदि के रूप में वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन, सूक्त आदि का विस्तार हुआ है । एक से अनेक और अनेक से एक होने की उक्ति गायत्री के ज्ञान और विज्ञान से संबंधित अनेकानेक दिशाधाराओं से संबंधित साधनाओं की विवेचना करके विभिन्न पक्षों को देखते हुए विस्तार रहस्य को भली प्रकार समझा जा सकता है ।

शिखा–सूत्र और गायत्री मंत्र सभी के लिए

शिखा और सूत्र हिंदू धर्म के दो प्रतीक चिह्न हैं, ईसाइयों के क्रूस और मुसलमानों के चांद–तारे की तरह । सृष्टि के आरंभ में ॐकार, ॐकार से तीन व्याहृतियों के रूप में तीन तत्व या तीन गुण, तीन प्राण । इसके बाद अनेकानेक तत्त्वदर्शन और साधना–विज्ञान के पक्षों का विस्तरण । सृष्टि के साथ जुड़े हुए अनेक भौतिक रहस्य भी

उसी क्रम उपक्रम के साथ जुड़े हुए समझे जा सकते हैं । अंत में भी जो एक शेष रह जाएगा, वह गायत्री का बीज मंत्र ॐकार ही है ।

समझदारी का उदय होते ही हर हिंदू बालक को द्विजत्व की दीक्षा दी जाती है । उसके सिर पर गायत्री का ध्वजारोहण शिखा के रूप में किया जाता है । सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत । उसका धारण–नर पशु से नर देव के जीवन में प्रवेश करना है । द्विजत्व अर्थात् जीवनचर्या को आदर्शों के अनुशासन में बाँधना । यह स्मरण प्रतीक रूप में हृदय, कंधे, पीठ आदि शरीर के प्रमुख अंगों पर हर घड़ी सवार रहे, इसलिए नौ महान सद्गुणों का प्रतीक–उपनयन हर वयस्क को पहनाया जाता है ।

मध्यकाल के सामंतवादी अंधकार युग में विकृतियां हर क्षेत्र में घुस पड़ीं । उनने संस्कृतिपरक भाव–संवेदनाओं और प्रतीकों को भी अछूता नहीं छोड़ा । कहा जाने लगा–गायत्री मात्र ब्राह्मण वंश के लिए है । अन्य जातियाँ उसे धारण न करें । स्त्रियाँ भी गायत्री से संबंध न रखें । उसे सामूहिक रूप से इस प्रकार न दिया जाए, ताकि कोई दूसरे लोग उसे सुन या सीख सकें । ऐसे मनगढ़ंत प्रतिबंध क्यों लगाए गए होंगे, इसका कारण खोजने पर एक ही बात समझ में आती है कि मध्यकाल में अनेकानेक मत संप्रदाय जब बरसाती उद्भिजों की तरह उबल पड़े, तो उनने अपनी अपनी अलग अलग विधि व्यवस्था, प्रथा परंपरा, भक्ति साधना आदि के भी अपने अपने ढंग के प्रसंग गढ़े होंगे । उनके मार्ग में अनादि मान्यता गायत्री से बाधा पड़ती होगी, दाल न गलती होगी । ऐसी दशा में उन सबने सोचा होगा कि इस अनादि मान्यता के प्रति अनेक संदेह पैदा किए जाएँ, जिससे भले लोगों का ध्यान शाश्वत प्रतिष्ठापना की ओर से विरत किया जा सके ।

कलियुग में गायत्री फलित नहीं होती, यह कथन भी ऐसे ही लोगों का है । इन लोगों को बतलाया जा सकता है कि युग निर्माण योजना ने किस प्रकार गायत्री महामंत्र के माध्यम से समस्त संसार के

नर नारियों को इस दिशाधारा के साथ जोड़ा है और उनमें से उन सभी को उल्लास भरे प्रतिफल किस प्रकार मिले हैं, जिन्होंने गायत्री उपासना के साथ जीवन साधना को भी जोड़ रखा है । यदि उनके प्रतिपादन सही होते, तो गायत्री अनुपयोगिता के पक्ष में लोकमत हो गया होता, जबकि विवेचना से प्रतीत होता है कि इन्हीं दिनों उसका विश्वव्यापी विस्तार हुआ है और अनुभव के आधार पर सभी ने यह पाया है कि 'सद्‌बुद्धि' की उपासना ही समय की पुकार और श्रेष्ठतम उपासना है ।

इस संदर्भ में नर और नारी का भी कोई अंतर नहीं स्वीकारा जा सकता है । गायत्री स्वयं मातृरूपा है । माता की गोद में उनकी पुत्रियों को न बैठने दिया जाए, यह कहाँ का न्याय है ? भगवान के साथ रिश्ते जोड़ते हुए उसे 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' जैसे श्लोकों में परमात्मा को सर्वप्रथम माता बाद में पिता, मित्र, सखा, गुरु आदि के रूप में बताया गया है । गायत्री को नारी रूप में मान्यता देने के पीछे एक प्रयोजन यह भी है कि मातृशक्ति के प्रति इन दिनों जो अवहेलना, अवज्ञा का भाव अपनाया जा रहा है, उसे निरस्त किया जा सके । अगली शताब्दी नारी शताब्दी है । अब तक हर प्रयोजन के लिए नर को प्रमुख और नारी को गौण ही नहीं, हेय वंचित रखे जाने योग्य माना जाता रहा है । अगले दिनों यह मान्यता सर्वथा उलट दी जाने वाली है । नारी वर्चस्व को प्राथमिकता मिलने जा रही है । ऐसी दशा में यदि भगवान को नारी रूप में प्रमुखतापूर्वक मान्यता मिले, तो उसमें न तो कुछ नया है और न अमान्य ठहराने योग्य । यह तो शाश्वत परंपरा का पुनर्जीवन मात्र है । स्रष्टा नें सर्वप्रथम प्रकृति को नारी के रूप में ही सृजा है । उसी की उदरदरी से प्राणिमात्र का उद्‌भव–उत्पादन बन पड़ा है । फिर नारी को गायत्री साधना से, उपनयन धारण से वंचित रखा जाए, यह किस प्रकार बुद्धिसंगत हो सकता है । शांतिकुंज के गायत्री आंदोलन ने रूढ़िवादी प्रतिबंधों को इस संदर्भ में कितनी तत्परता और सफलतापूर्वक निरस्त करके

रख दिया है, इसे कोई भी, कहीं भी देख सकता है । गायत्री उपासना और यज्ञोपवीत धारण को बिना किसी भेदभाव के सर्वसाधारण के लिए अपनी योग्य स्थिति में ला दिया गया है । उसके सत्परिणाम भी प्रत्यक्ष मिलते देखे जा रहे हैं । अगले दिनों समस्त संसार एक केन्द्र की ओर बढ़ता जा रहा है । ऐसी दशा में गायत्री को सार्वभौम मान्यता मिले और उसे सार्वजनिक ठहराया जाए, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

यज्ञ और गायत्री एक दूसरे के पूरक

गायत्री का पूरक एक और भी तथ्य है–यज्ञ । दोनों के सम्मिश्रण से ही एक पूर्ण आधार विनिर्मित होता है । भारतीय संस्कृति के जनक–जननी के रूप में यज्ञ और गायत्री को ही माना जाता है । यह प्रकृति और पुरुष हैं । इन्हें महामाया एवं परब्रह्म की संयुक्त संयोजन स्तर की मान्यता मिली है । इसलिए गायत्री दैनिक साधना में अग्नि की साक्षी रखने की, दीपक, अगरबत्ती आदि को संयुक्त रखने की प्रक्रिया चलती है । गायत्री पुरश्चरण के उपरांत जप के अनुपात से हवन करने, आहुति देने का विधान है । दोनों को मिलाकर गायत्री यज्ञ प्रक्रिया बनती है । धार्मिक कर्मकांडों में वही सर्वोपरि है । धर्मकृत्यों के, हर्षोत्सवों के सफल शुभारंभ के अवसर पर प्रायः गायत्री यज्ञ की ही प्रक्रिया संपन्न होती है । षोडश संस्कारों में, पर्व त्यौहारों में उसी की प्रमुखता एवं अनिवार्यता रहती है ।

यज्ञाग्नि की गोदी में हर भारतीय धर्मानुयायी को चिता पर सुलाया जाता है । जन्मकाल में नामकरण, पुंसवन आदि संस्कारों के समय यज्ञ होता है । यज्ञोपवीत संस्कार की चर्चा में ही 'यज्ञ' शब्द का प्रथम प्रयोग होता है । विवाह में अग्नि की सात परिक्रमाओं का प्रमुख विधि विधान है । वानप्रस्थ भी यज्ञ की साक्षी में किया जाता है । सभी पर्व त्यौहार यज्ञाग्नि के सम्मिश्रण से ही संपन्न होते हैं । भले ही इस विस्मृति के जमाने में उसे अशिक्षित होने पर भी महिलाएँ "अग्यारी" के रूप में चिह्न पूजा की तरह संपन्न कर लिया करें । होली तो

वार्षिक यज्ञ है । नवान्न का अपने लिए प्रयोग करने से पूर्व उसे सभी लोग पहले यज्ञ पिता को अर्पण करते हैं, बाद में स्वयं खाने का प्रचलन है ।

गायत्री का एक अविच्छिन्न पक्ष 'यज्ञ' प्राचीनकाल की मान्यताओं के अनुसार तो परब्रह्म का प्रत्यक्ष मुख ही माना गया है । प्रथम वेद–ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में यज्ञ को पुरोहित की संज्ञा दी है, साथ ही यह भी कहा है कि वह होताओं को मणिमुक्तकों की तरह बहुमूल्य बना देता है । अग्नि की ऊर्जा और तेजस्विता ऐसी है, जिसे हर किसी को धारण करना चाहिए । अग्नि अपने संपर्क में आने वालों को अपनी ऊर्जा प्रदान करती है, वही रीति–नीति हमारी भी होनी चाहिए ।

शांतिकुंज के ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में जो शोध कार्य उच्च वैज्ञानिक शिक्षण प्राप्त विशेषज्ञों द्वारा चल रहा है, उसमें गायत्री मंत्र के शब्दोच्चारण और यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा की इस प्रयोजन के लिए खोज की जा रही है कि उनका प्रभाव अध्यात्म तक ही सीमित है या भौतिक क्षेत्र पर भी पड़ता है । पाया गया है कि गायत्री मंत्र के साथ जुड़ी हुई यज्ञ ऊर्जा पशु–पक्षियों, वृक्ष वनस्पतियों तक के उत्कर्ष में सहायक होती है । उसमें मनुष्यों के शारीरिक एवं मानसिक रोगों के निवारण कर सकने की तो विशेष क्षमता है ही, प्रदूषण के निवारण और वातावरण का परिशोधन भी उसके माध्यम से सहज बन पड़ता है । इसके अतिरिक्त ऐसी संभावनाएँ और भी प्रकट होने की आशा है, जिसके आधार पर और भी व्यापक समस्याओं में से अनेकों का निराकरण बन सके । ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान के अतिरिक्त देश के हर कोने में यज्ञ परंपरा को प्रोत्साहन देते हुए यह जाँचा जा रहा है कि उस संभावित ऊर्जा के सहारे सत्प्रवृत्ति संवर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन में कहाँ, किस प्रकार, किस हद तक सहायता मिलती देखी गई है । गायत्री यज्ञों को एक स्वतंत्र आंदोलन के रूप में धर्मानुष्ठान का स्तर प्रदान किया गया है । उस अवसर पर उपस्थित जन समुदाय को यह भी समझाने का उपक्रम चलता है कि गायत्री यज्ञों में

सन्निहित उत्कृष्टतावादी प्रतिपादनों के अवधारण से वैयक्तिक एवं सामूहिक अभ्युदय में कितनी महत्वपूर्ण सहायता मिलती है । पिछले दिनों आध्यात्मिक प्रभाव की व्यापक रूप से जाँच-पड़ताल हुई है और उसे हर दृष्टि से उपयोगी पाया गया है ।

एक आध्यात्मिक प्रयोग

यह युग संधि की वेला है । बीसवीं सदी में यज्ञाग्नि ही अवांछनीयताओं का समापन एवं इक्कीसवीं सदी के साथ उज्ज्वल भविष्य के आगमन एवं सतयुग की वापसी का वातावरण विनिर्मित करने जा रही है । दोनों शताब्दियों की मध्यवर्ती अवधिवाली युग संधि इन्हीं दिनों चल रही है । इस प्रयोजन के लिए जहाँ व्यावहारिक प्रत्यक्ष प्रयासों को क्रियान्वित किया जा रहा है, वहाँ एक करोड़ याजकों द्वारा एक लाख गायत्री यज्ञ इन्हीं दिनों संपन्न किए जा रहे हैं और आशा की जा रही है कि भागीरथी गंगावतरण जैसा अभिनव सुयोग एक बार फिर उतरेगा । गायत्री मंत्र के साथ यज्ञ ऊर्जा जुड़ जाने से अभीष्ट उद्देश्य का विस्तार उसी प्रकार होता है, जैसे पतली सी आवाज लाउडस्पीकर के साथ जुड़ जाने पर दूर दूर तक सुनी जा सकने योग्य बनती है । रेडियो प्रसारण और दूरसंचार उपक्रम में भी यही विधा काम करती है । यज्ञाग्नि की बिजली गायत्री मंत्र की शब्द शृंखला के साथ समन्वित होकर अभीष्ट धर्म कृत्य को स्थानीय नहीं रहने देती, वरन् व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करती है । उससे असंख्य लोग अनेकानेक प्रकार से लाभान्वित होते हैं ।

बैट्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी भी होती हैं और इतनी छोटी भी कि सामान्य सी घड़ी के बीच बैठकर उस यंत्र को साल भर तक चलाती रह सके । गायत्री यज्ञ बड़े आकार के भी हो सकते हैं और दीपयज्ञ स्तर के छोटे आकार वाले भी । चिनगारी छोटी होती है, फिर भी उसमें ज्वालमाल दावानल बनने की संभावना विद्यमान रहती है ।

गायत्री मंत्र के साथ जुड़ी हुई ऊर्जा ऐसे ही चमत्कार उत्पन्न करती है, भले ही वह आकार में छोटी ही क्यों न हो ? साधन सामग्री

की मंहगाई, लंबा समय और पुरोहितों की दान दक्षिणाओं का भार सहन न कर पाने की वर्तमान उपेक्षा को देखते हुए दीप यज्ञों के रूप में गायत्री मंत्र के अभिनव प्रयोग चल पड़े हैं और उनका प्रतिफल भी उच्चस्तरीय एवं व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करते हुए देखा गया है ।

युग संधि की वर्तमान दस वर्षीय अवधि में शांतिकुंज से दो अत्यंत प्रचंड संकल्प उभरे हैं । एक दीप यज्ञीय माध्यम से १ लाख सृजन साधक खड़े करना । दूसरा–उभरे प्रयास में सहभागी बनने के लिए एक करोड़ व्यक्तियों को जुटाना । दोनों प्रयोजन जिस गति से संपन्न होते चलेंगे, उसी अनुपात से नवयुग की–सतयुग की वापसी के अनुरूप वातावरण बनता चला जाएगा । इसमें प्रयोग और प्रयास के सफल होने की संभावनाएँ अभियान को आरंभ करते करते ही दीख पड़ रही हैं । भविष्य के संबंध में आशापूर्वक विश्वास किया गया है कि नवयुग के अवतरण की महती संभावना नियत समय पर होकर रहेगी । पुरुषार्थ अपनी जगह है और परमार्थ अपनी जगह । दोनों के समन्वय से, एक और एक के अंक बराबर रखने पर दो नहीं, वरन् ग्यारह बन जाता है, इस कथनी की यथार्थता वर्तमान दीपयज्ञ समारोहों से फलित होती देखी जा सकती है । एक लाख संगठित आध्यात्मिक प्रयोग और एक करोड़ व्यक्तियों द्वारा अपनाए गए सृजन पुरुषार्थ दोनों मिलकर नवयुग का अवतरण संभव बनाए और उसे मत्स्यावतार की तरह विश्व व्यापी बनाए, तो इसमें किसी को भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।

यह मान्यता सभी विचारशीलों एवं सभी युग मनीषियों द्वारा स्वीकारी गयी है कि इन दिनों व्यक्ति और समाज के सामने जो संकट और विग्रहों के घटाटोप छाए हुए हैं, उसका मुख्य कारण बुद्धि का भटकाव है । भ्रष्ट चिंतन से दुष्ट आचरण और उसके फलस्वरूप अनर्थों की बाढ़ आई हुई है । उसका निराकरण करने के लिए विचारक्रांति ही एक मात्र उपचार है । जन मानस को परिष्कृत किए बिना विग्रहों के अनेकानेक स्वरूपों का निराकरण संभव नहीं हो

सकेगा। विचारक्रांति अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है । इसे संपन्न करने के लिए गायत्री यज्ञ में सन्निहित तत्वज्ञान जनमानस में प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए, साथ ही यह भी आवश्यक है कि आद्यशक्ति, समग्र शक्ति के रूप में जानी जाने वाली गायत्री उपासना को भी प्रश्रय दिया जाए । यह पर्याप्त न होगा कि कुछ ही लोग उसकी कठोर तपश्चर्या संपन्न करके कर्तव्य की इतिश्री कर लें, वरन् आवश्यक यह भी है कि इसके साथ साथ जन जन की प्राण चेतना का समन्वय हो । अधिकाधिक लोग एक स्तर की साधना पद्धति अपनाएँ और उसके सहारे बन पड़ने वाली सामूहिक प्राण ऊर्जा का विस्तार करते हुए वह प्रक्रिया संपन्न करें, जिसे सीमित रखने से काम नहीं चलेगा, वरन् उसकी व्यापकता, बहुलता ही अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति वाला लक्ष्य पूरा कर सकेगी ।

अनेक प्रयोजनों के लिए गायत्री उपासना के अनेक विधि विधान हैं । उनका विस्तृत वर्णन साधना विज्ञान से संबंधित शास्त्रों, अनुभवों और निष्णातजनों से प्राप्त किया जा सकता है । उपयुक्त गुरु चुनते हुए उनके मार्गदर्शन में की गई साधना अगणित फलदायी होती है । मानसिक जप कहीं भी करते रहने में कोई आपत्ति नहीं, किंतु यदि किसी प्रयोजन विशेष से एक संकल्पित अनुष्ठान यदि किया जाना है तो विधि विधान विस्तार से जानकर ही उसे आरंभ किया जाना चाहिए । यहाँ यह भ्रांति भली भाँति मिटा लेनी चाहिए कि गायत्री की उपासना क़िसी साधक को किसी प्रकार की हानि पहुँचाती है, वस्तुतः गायत्री साधना कभी किसी प्रकार की कोई क्षति साधक को नहीं पहुँचाती, क्योंकि यह तो सद्‌बुद्धि अवधारणा की साधना है ।

आत्मशोधन, साधना का एक अनिवार्य चरण

आपरेशन करने से पूर्व औजारों को उबालना पड़ता है । सिनेमा घर मे प्रवेश करने वालों के पास गेट पास होना चाहिए । पूजा उपासना के कर्मकांडों की विधा अपनाने से पूर्व साधक की निजी जीवनचर्या उच्चकोटि की होनी चाहिए । प्राचीनकाल में यह तथ्य

अध्यात्म विज्ञान में पहला चरण बढ़ाने वालों को भी समय से पूर्व जानने होते थे । अब तो लोग मात्र कर्मकांडों को ही सब कुछ मानने लगे हैं और सोचते हैं कि अमुक विधि से अमुक वस्तुओं की, अमुक शब्दों के उच्चारण द्वारा मनोवांछित अभिलाषाएँ पूरी कर ली जाएंगी । इस सिद्धांत विहीन प्रक्रिया का जब कोई परिणाम नहीं निकलता, समय की बर्बादी भर होती है, तो दोष जिस तिस पर लगाते हैं । लोग वर्णमाला सीखना अनावश्यक मानते और एम. ए. का प्रमाण पत्र झटकने की फिराक में फिरते हैं । समझा जाना चाहिए कि राजयोग के निर्माता महर्षि पातंजलि ने पहले यम और नियमों के परिपालन को प्रमुखता दी है, इसके बाद ही आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि साधनात्मक प्रयोजनों की शिक्षा दी है । गायत्री मंत्र के साधकों को सर्वप्रथम सद्बुद्धि धारण करने, सत्कर्म अपनाने की प्रक्रिया अपनानी चाहिए । जब प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण होने में सफलता मिल जाए, तब रेखागणित, बीजगणित, व्याकरण आदि का अभ्यास करना चाहिए । आज की महती विडंबना यह है कि लोग विधि विधान, कर्मकांडों, उच्चारणों को ही समग्र समझ बैठते हैं और उतने भर से ही यह अपेक्षा कर लेते हैं कि उन पर दैवी वरदान बरसने लगेंगे और सिद्धियाँ, विभूतियाँ बटोरने में सफलता मिल जाएगी । समझना चाहिए कि अध्यात्म विद्या, जादूगरी–बाजीगरी नहीं है । उसके पीछे व्यक्तित्व को उभारने, निखारने और उत्कृष्ट बनाने की अनिवार्य शर्त जुड़ी हुई है, जिसे प्रथम चरण में ही पूरा करना पड़ता है ।

बाजार में ऐसी ही मंत्र तंत्र की पुस्तकें बिकती हैं जिनमें अमुक कर्मकांड अपनाने पर अमुक सिद्धि मिल जाने की चर्चा होती है । तथाकथित गुरु लोग भी ऐसी ही कुछ क्रिया प्रक्रिया भर को पूर्ण समझते और शिष्यों को वैसा ही कुछ बताते हैं । इस प्रकार भ्रमग्रस्तों में से एक को धूर्त और दूसरे को मूर्ख कहा जाए, तो अत्युक्ति न होगी । धातुओं को, रसायनों को, विष को सर्वप्रथम

शोधन, जारण, मारण आदि के द्वारा प्रयोग में आने योग्य बनाना पड़ता है, तभी उन्हें औषधि की तरह प्रयुक्त किया जाता है । मकरध्वज जैसी रसायन बनाने की प्रारंभिक झंझट से बचकर कोई कच्चा पारा खाने लगे, तो बलिष्ठता प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती, उलटे हानि ही अधिक होगी ।

परिष्कृत जीवन को परिपुष्ट जीवन कह सकते हैं और पूजा-पाठ को शृंगार । स्वस्थता के रहते यदि शृंगार भी सजा लिया जाए, तो हर्ज नहीं, पर अकेले शृंगार सज्जा बनाकर कोई कृषकाय जराजीर्ण, रोगग्रस्त, मात्र उपहासास्पद ही बन सकता है । इन दिनों तो शृंगार को ही सब कुछ मान बैठे हैं और स्वस्थता की आवश्यकता नहीं समझते । मंत्र तंत्र का कर्मकांड पूरा करके बड़ी बड़ी आशा अपेक्षा करने लगते हैं । मान्यता में बेतुकापन रहने से जब कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, तो नास्तिकों जैसी मान्यता बनाने या चर्चा करने लगते हैं ।

इन पंक्तियों में विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्डों की चर्चा इसलिए नहीं की जा रही है कि यदि जीवन साधना कर ली गई हो, तो उलटा नाम जपने वालों को भी ब्रह्म समान बन जाने के तथ्य सामने आते देखे गए हैं । मात्र राम नाम के प्रभाव से ही पत्थर की शिलाएँ पानी पर तैरने जैसी कथा गाथाएँ सही रूप में सामने आती देखी जाती हैं । अन्यथा रावण, मारीच, भस्मासुर आदि के द्वारा की गई कठोर शिव साधना भी परिणाम में मात्र अनर्थ ही प्रस्तुत करती देखी गई है । मातृ शक्ति की पवित्रता और उत्कृष्टता अंतःकरण के मर्मस्थल तक जमा ली जाए, तो उससे भी इन्हीं नेत्रों द्वारा हर कहीं, कभी भी देवी का साक्षात्कार होने लगता है ।

उपासना, विधान और तत्वदर्शन

सामान्य विधि विधान में गायत्री मंत्र का ॐकार, व्याहृति समेत त्रिपदा गायत्री का जप ही शांत एकाग्रमन से करने पर अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति हो जाती है । जप के साथ ध्यान भी अनिवार्य रूप

से जुड़ा हुआ है । गायत्री का देवता सविता है । सविता प्रातःकाल के उदीयमान स्वर्णिम सूर्य को कहते हैं । यही ध्यान गायत्री जप के साथ किया जाता है, साथ ही यह अभिव्यक्ति भी उजागर करनी होती है कि सविता की स्वर्णिम किरणें अपने शरीर में प्रवेश करके ओजस् मनः क्षेत्र में प्रवेश करके तेजस् और अंतःकरण तक पहुँचकर वर्चस् की गहन स्थापना कर रही हैं । स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को समर्थता, पवित्रता और प्रखरता से सरावोर कर रही हैं । यह मान्यता मात्र भावना बनकर ही नहीं रह जाती, वरन् अपनी फलित होने वाली प्रक्रिया का भी परिचय देती है । गायत्री की सही साधना करने वालों में ये तीनों विशेषताएँ प्रस्फुटित होती देखी जाती हैं ।

शुद्ध स्थान पर, शुद्ध उपकरणों का प्रयोग करते हुए, शुद्ध शरीर से गायत्री उपासना के लिए बैठा जाता है । यह इसलिए कि अध्यात्म प्रयोजनों में सर्वतोमुखी शुद्धता का संचय आवश्यक है । उपासना के समय एक छोटा जलपात्र कलश के रूप में और यज्ञ की धूपबत्ती या दीपक के रूप में पूजा चौकी पर स्थापित करने की परंपरा है । पूजा के समय अग्नि स्थापित करने का अर्थ–अग्नि को अपना इष्ट मानना । तेजस्विता, साहसिकता और आत्मीयता जैसे गुणों से अपने मानस को ओतप्रोत करना । जल का अर्थ है–शीतलता, शांति, नीचे की ओर ढलना अर्थात् नम्रता का वरण करना ।

पूजा चौकी पर साकार उपासना वाले गायत्री माता की प्रतिमा रखते हैं । निराकार में वही काम सूर्य का चित्र अथवा दीपक, अग्नि रखने से काम चल जाता है । पूजा के समय धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प आदि का प्रयोग करना होता है । यह सब भी किन्हीं आदर्शों के प्रतीक हैं । अक्षत अर्थात् अपनी कमाई का एक अंश भगवान के लिए अर्पित करते रहना । दीपक अर्थात् स्वयं जल कर दूसरों के लिए प्रकाश उत्पन्न करना । पुष्प शोभायमान भी होते हैं और सुगंधित भी । मनुष्य को भी अपना जीवनयापन इसी प्रकार करना चाहिए । पंचोपचार की पूजा सामग्री इसलिए समर्पित नहीं की जाती कि

भगवान को उनकी आवश्यकता है, वरन् उसका प्रयोजन यह है कि दिव्य सत्ता यह अनुभव करे कि साधक यदि सच्चा हो तो उसकी भक्ति भावना में इन सद्गुणों का जुड़ा रहना अनिवार्य स्तर का होना चाहिए ।

उपचार सामग्री यदि न हो, तो सब कुछ ध्यान रूप में मानसिक स्तर पर किया जा सकता है । जिस प्रकार बड़े आकार वाले यज्ञ प्रक्रिया को छोटे दीपयज्ञों के रूप में सिकोड़ लिया गया है, उसी प्रकार कर्मकांड सहित पूजा–उपचार को मात्र भावना स्तर पर मानसिक कल्पनाओं के आधार पर किया जा सकता है । रास्ते चलते, काम–धाम करते, लेटे–लेटे भी गायत्री उपासना कर लेने की परंपरा है, पर वह सब होना चाहिए भाव संवेदनापूर्वक, मात्र कल्पना कर लेना ही पर्याप्त नहीं है ।

गायत्री अनुष्ठानों की भी एक परंपरा है । नौ दिन में चौबीस हजार जप का विधान है, जिसे प्रायः आश्विन या चैत्र की नवरात्रियों में किया जाता है, पर उसे अपनी सुविधानुसार कभी भी किया जा सकता है । इसमें प्रतिदिन २७ मालाएं पूरी करनी पड़ती हैं और अंत में यज्ञ–अग्निहोत्र संपन्न करने का विधान है ।

सवालक्ष अनुष्ठान चालीस दिन में पूरा होता है, उसमें ३१ मालाएं प्रतिदिन करनी पड़ती हैं । उसके लिए महीने की पूर्णिमा के आरंभ या अंत को चुना जा सकता है । सबसे बड़ा अनुष्ठान २४ लाख जप का होता है, जिसे प्रायः एक वर्ष में पूरा किया जाता है ।

युग तीर्थ में साधना का विशेष महत्व

शांतिकुंज एक संस्कारित तपस्थली है, जहाँ करोड़ों गायत्री मंत्र का जप अनुष्ठान अब तक संपन्न हो चुका है, व नित्य लक्षाधिक जप संपन्न होकर नौकुंडी यज्ञशाला में साधकों द्वारा आहुतियाँ दी जाती हैं । यह ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की तपस्थली भी है तथा परमपावनी पुण्यतोया भागीरथी के तट पर हिमालय के हृदय उत्तराखंड के द्वार पर यह अवस्थित है । इसी कारण उसे एक सिद्धाश्रम की, युगतीर्थ

की उपमा दी जाती है, जिसके कल्पवृक्ष के तले साधना करने वाला साधक अपनी मनोवांछित कामनाएँ ही नहीं पूरी करता, यथाशक्ति मनोबल–आत्मबल भी संपादित कर के लौटता है ।

शांतिकुंज की तीर्थ गरिमा एवं स्थान की विशेषता का अनुभव करते हुए जब कभी उपासकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है और सीमित आकार के आश्रम में किसी प्रकार ठूंस–ठांस करके इच्छुकों का तारतम्य बिठाना पड़ता है, तो अनुष्ठान को अति संक्षिप्त पांच दिन का भी कर दिया जाता है और उतने ही दिन में मात्र १०८ माला का अति संक्षिप्त अनुष्ठान करने से भी काम चला लिया जाता है । कुछ साधक ऐसे भी होते हैं, जिन्हें अत्यधिक व्यस्तता रहती है । उनके लिए भी पाँच दिन शांतिकुंज रहकर अनुष्ठान कर लेने की व्यवस्था बना दी जाती है, पर यह है–आपत्तिकालीन न्यूनतम व्यवस्था ही ।

जिन्हें अत्यधिक व्यस्तता नहीं है और जिन पर काम का अत्यधिक दबाव नहीं है, उनके लिए ९ दिन का २४ हजार जप वाला परंपरागत अनुष्ठान ही उपयुक्त पड़ता है । इतनी अवधि शांतिकुंज के वातावरण में रहकर व्यतीत की जाए, तो वह अपेक्षाकृत अधिक फलप्रद और अधिक प्रभावोत्पादक रहती है । इतनी अवधि में सत्संग के लिए प्रवचनपरक वह लाभ भी मिल जाता है, जिसे जीवन कला का शिक्षण एवं उच्चस्तरीय जीवनयापन का लक्ष्यपूर्ण मार्गदर्शन कहा जा सकता है । कितने ही लोगों की अभिलाषा हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, कनखल आदि देखने की भी होती है । वह अवकाश भी तभी मिलता है, जब नौ दिन का संकल्प लेकर अनुष्ठान प्रक्रिया में प्रवेश किया जाए । जिन्हें सवा लक्ष का चालीस दिन में संपन्न होने वाला अनुष्ठान करना हो, उन्हें अपने घर पर ही रह कर उसे करना चाहिए, क्योंकि शांतिकुंज में इतनी लंबी अवधि तक रहने की सुविधा मिल सकना हर दृष्टि से कठिन पड़ता है ।

इक्कीसवीं सदी में एक लाख प्रज्ञा संगठन बनाने और एक करोड़ व्यक्तियों की भागीदारी का निश्चित निर्धारण किया गया है । उस निमित्त भी वरिष्ठ भावनाशीलों को बहुत कुछ सीखना, जानना और शक्ति संचय की आवश्यकता पड़ेगी, वह प्रसंग अधिक विस्तार से समझने और समझाने का है । इसलिए भी नौ दिन का समय निकाल कर शांतिकुंज में प्रेरणा, दक्षता एवं क्षमता उपलब्ध करने की आवश्यकता पड़ेगी । इसलिए अच्छा हो कि जिनके पास थोड़ा अवकाश हो, वे नौ दिन का सत्र हर महीने तारीख १ से ९, ११ से १९ तथा २१ से २९ तक के होते हैं जो निरंतर जारी रहते हैं किंतु पांच दिन के सत्रों में ही जिन्हें आना है, उनके लिए तारीख १ से ५, ७ से ११, १३ से १७ और १९ से २३ तथा २५ से २९ तक का निर्धारण है । वे भी दोनों साथ साथ ही चलते रहते हैं । जिन्हें जैसी सुविधा हो, अपने पूरे परिचय समेत आवेदन पत्र भेजकर समय से पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए । बिना स्वीकृति लिए आने वालों को स्थान मिल सके, इसकी गारंटी नहीं दी जा सकती । अशिक्षितों, जराजीर्णों, संक्रामक रोगग्रस्तों को प्रवेश नहीं मिलता ।

पुरुषों की तरह महिलाएँ भी सत्र साधना के लिए शांतिकुंज आ सकती हैं । पर उन्हें छोटे बच्चों को लेकर आने की धर्मशाला स्तर की व्यवस्था यहाँ नहीं है । साधना, प्रशिक्षण और परामर्श में प्रायः इतना समय लग जाता है कि उस व्यस्तता के बीच छोटे बालकों की साज संभाल बन नहीं पड़ती है । अतः मात्र उन्हीं को सत्रों में आना चाहिए, जो निर्विघ्न कुछ समय रह कर साधना कर यहां के वातावरण का लाभ ले सकें व अनुशासित व्यवस्था में भी गड़बड़ी न आने दें ।

संस्कारों की सुलभ व्यवस्था

शांतिकुंज में यज्ञोपवीत संस्कार और विवाह संस्कार कराने की भी सुव्यवस्था है । इस प्रयोजन में प्रायः आडंबर बहुत होता देखा जाता है । खर्चीले रस्मो–रिवाज भी पूरे करने पड़ते हैं । इसलिए

उनकी ओर हर किसी की उपेक्षा बढ़ती जाती है । शांतिकुंज में यह सभी कृत्य बिना खर्च के होते हैं, इसलिए परिजनों के परिवारों में यह प्रचलन विशेष रूप से चल पड़ा है कि यज्ञोपवीत धारण के साथ जुड़ी हुई गायत्री मंत्र की अवधारणा इसी पुण्य भूमि में संपन्न कराई जाए ।

स्पष्ट है कि खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं । बिना दहेज और जेवर वाली शादियाँ प्रायः स्थानीय प्रतिगामिता के बीच ठीक तरह बिना विरोध के बन नहीं पड़तीं । इसलिए विगत लंबे समय से चलने वाली ९ कुण्डों की यज्ञशाला का दैवी प्रभाव अनुभव करते हुए विवाह संस्कार संपन्न कराने के लिए गायत्री माता के संस्कारों से अनुप्राणित, यह स्थान ही अधिक उपयुक्त माना जाता है । हर वर्ष बड़ी संख्या में ऐसे विवाह यहाँ संपन्न होते रहते हैं ।

साधना के लिए, विशेषतया गायत्री उपासना के लिए शांतिकुंज में वह उपक्रम संपन्न करना सोने और सुगंध के सम्मिश्रण जैसा काम देता है ।

इस भूमि में रहकर साधना करने की इसलिए भी अधिक महत्ता है कि उसके साथ युग संधि महापुरश्चरण की प्रचण्ड प्रक्रिया भी अनायास ही जुड़ जाती है और प्रतिभा परिष्कार का वह प्रयोजन भी पूरा होता है, जिनके माध्यम से भावी शताब्दी में महामानवों के स्तर की भूमिका निबाहने का सुयोग बन पड़ता है । युग शक्ति गायत्री का, मिशन के संचालक को दिया गया यह आश्वासन जो है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा